International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

18वीं शताब्दी में भारत की आर्थिक स्थिति पर एक विशेषणात्मक अध्ययन

Saveen
MA in History, UGC Net
Email : skjakhar70@gmail.com
VPO – Jhanwa, Jhajjar, Haryana (India)

शोध–आलेख सार : 18वीं शताब्दी का भारतीय समाज आर्थिक दृष्टि से विषमताओं से भरा हुआ था। समाज में जहां तक और अमीर वर्ग विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था तो दूसरी उन्हें निर्धन किसान, कास्तकार, मजदूर आदि जनसाधारण लोगों द्वारा पूरे वर्ष कठोर परिश्रम करने के बावजूद उन्हें अपना तथा अपने परिवार का पालन–पोषण करने में भी कठिनाइयाँ महसूस हो रही थी। समाज में सामन्तों का बोलबाला था, इसलिए उनके पास जीवन की सभी ऐश–आराम एवं विलास की वस्तुएँ उपलब्ध थी। कृषक अत्यंत गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहे थे। बढ़ते हुए करों की माँग, अधिकारियों के अत्याचारों, जमींदारों एवं भूमि ठेकेदारों के आर्थिक शोषण ने जनसाधारण लागों के जीवन को और अधिक कष्टपूर्ण बना दिया था। नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने तो भारत की आर्थिक स्थिति ही बिगाड़ कर रख दी थी। इन आक्रमणों के परिणामस्वरूप अनेक बड़े–बड़े उन्नत एवं औद्योगिक नगर नष्ट हो गए। इसके अतिरिक्त जाटों, सिक्खों आदि के विद्रोह से भी भारत की अर्थव्यवस्था को बहुत नुकसान पहुँचा।

मुख्य–शब्द : समाज, किसान, कास्तकार, मजदूर, आर्थिक शोषण, आक्रमण।

शोध–प्रविधि: इस शोध–पत्र के लिए शोध सामग्री अधिकांश रूप में द्वितीयक स्रोतों से ग्रहण की गई हैं। इसमें ऐतिहासिक विश्लेषण व वर्णनात्मक दृष्टिकोण के साथ–साथ शोधकर्त्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं व समाचार पत्रों से प्राप्त की गई हैं।

18वीं शताब्दी के मध्य में भारत की आर्थिक स्थिति इस प्रकार थी–

1. आत्म–निर्भर गाँव :–

18वीं शताब्दी के मध्य, भारतीय गाँव आर्थिक दृष्टि से स्वाबलम्बी अर्थात् आत्मनिर्भर थे। प्रत्येक गांव में विभिन्न व्यवसायों के लोग निवास करते थे, जैसे– लुहार, कुम्भकार, बढ़ई, चर्मकार, स्वर्णकार, जुलाहे, धोबी, तेली, वैद्य, नाई, ग्वाले इत्यादि। ये लोग कृषि कार्यों के अतिरिक्त विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन भी करते थे। ये अनाज से लेकर गांव के लोगों की सभी प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकताओं की पूर्ति मिलकर अर्थात् आपसी सहयोग से कर लेते थे। केवल कठिनाई के समय ही कोई कृषक या गाँव का व्यक्ति बाहर से अनाज खरीदता था। यूरोपीय जातियों विशेषकर अंग्रेजो के आगमन से भारतीय गांवों में नकदी का प्रचलन हो गया था, इसके बावजूद अधिकतर लेन–देन वस्तु विनिमय के आधार पर किया जाता था। अंग्रजों द्वारा भारत में राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के पश्चात् गाँवों की आत्म–निर्भरता धीरे–धीरे समाप्त हो रही थी।

2. कृषि का पिछड़ापन :–

18वीं शताब्दी में भारतीय कृषि की स्थिति अच्छी नहीं थीं भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनता कृषि कार्यों में लगी हुई थी। कृषि प्राचीन एवं परंपरागत ढंग से ही की जाती थी। कृषि के नये तरीकों अथवा

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

तकनीकों पर बल नहीं दिया जाता था। यद्यपि भारतीय कृषक अपने खेतों में जी तोड़ मेहनत करते थे इसके बावजूद उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हो पाती थी। भारत की अधिकतर भूमि वर्षा के पानी पर निर्भर थी। समय–समय पर पड़ने वाले अकाल, महामारी आदि कृषि तथा कृषकों की दशा को और दयनीय बना देते थे। भारत में 1595 से 1792 ई0 तक 24 बार अकाल पड़े थे। अनाज की कमी तथा यातायात के साधनों की अनुपलब्धता से जनसाधारण लोगों का जीवन बहुत प्रभावित हुआ था।

18वीं शताब्दी की मुख्य फसल अनाज थी। उस समय गेहूँ, चना, जौ, चावल, मक्का, मटर, बाजरा, विभिन्न प्रकार की दालें तथा सब्जियाँ आदि काफी मात्रा में उगाई जाती थी। उत्तरी भारत में गेहूँ, मक्का, कपास तथा गन्ना आदि उगाये जाते थे। इसके अलावा कुछ वाणिज्यिक फसलें जैसे, तंबाकु, नील, अफीम आदि उगाये जाते थे। दक्षिण भारत की मुख्य फसलें चावल, बाजरा तथा ज्वार थी। अनाज की कीमतें भी सम्पूर्ण देश में एक जैसी थी। बंगाल में जहां अनाज सस्ता था, वहीं पर उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में अनाज की कीमतें ज्यादा थी। खाद्यान्न पदार्थों की तुलना में वस्तुएँ सस्ती थी, परन्तु इनकी किमतें भी घटती–बढ़ती रहती थी। खेतों में कार्य करने वाले कास्तकारों या मजदूरों को उपज का भाग ही मेहनताना के रूप में दिया जाता था, जबकि नगरों में रहने वाले कारीगरों एवं मजदूरों को नकद मजदूरी दी जाती थी। उस समय एक साधारण मजदूर को 6 नये पैसे तथा एक कुशल कारीगर को 10 नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से वेतन या मजदूरी दी जाती थी।

3. गरीबी :–

18वीं शताब्दी में अमीरी और गरीबी के बीच बहुत अंतर था। जहां पर नवाब, राजा, उच्च अधिकारी, सामन्त, जमींदार आदि अमीरी का जीवन व्यतीत करते थे, वहीं पर कृषक, कारीगर, मजदूर आदि लोग गरीबी का जीवन व्यतीत करते थे। भारत में उस समय गरीब लोगों की संख्या बहुत ज्यादा थी। यूरोपीयन यात्रियों तथा समकालीन लेखकों ने उस समय की भारतीय जनता की गरीबी का वर्णन किया है। 18वीं शताब्दी में गांवों में अधिकतर लोग कच्चे तथा घास–फूस के बने झोपड़ों में निवास करते थे। उनके घरों में एक या दो पहनने के वस्त्र, एक या दो चारपाइयाँ, कुछ खाने–पीने के बर्तनों के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता था। हालाँकि पोष्टिक आहार जैसे– सब्जियाँ, दूध, दही मक्खन आदि की उनके पास कोई कमी नहीं थी। यूरोपीयन यात्री फिच ने भी लिखा है कि उत्तरी भारत के लोग केवल नीचे पहने जाने वाला वस्त्र अर्थात् लंगोट ही धारण करते हैं और सर्दियों में वे रूई के बने चोगे तथा सिर पर छेद वाली टोपी धारण करते है।

भारत के कृषक एवं जनसाधारण जनता केवल अपनी आवश्यकता के अनुसार ही अनाज अपने पास रखते थे। ताराचन्द के अनुसार बुरे समय के लिए उनके पास अतिरिक्त अनाज नहीं बच पाता था। वे साधारण वस्त्र पहनते थे और देखने में गरीब लगते थे। उनकी आवश्यकताएँ बहुत सीमित थी। वे अपने जीवन से सन्तुष्ट थे और कभी अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयास नहीं करते थे। ताराचन्द के अनुसार, ''उच्च वर्ग में धन का प्रयोग ठीक न होने के कारण भारत की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। प्रान्तीय सरदारों का जीवन स्तर ऊँचा और विलासपूर्ण था।'' धनी लोग ज्यादातर धन विलास की वस्तुएँ जैसे, शराब, मांस, नौकरों, दासों, दहेजों, स्त्रियों का सामान आदि भरा पड़ा रहता था। राजा, सामन्त, नवाब आदि उच्च कोटि के वस्त्र धारण करते थे तथा कीमती आभूषण धारण करते थे।

4. उद्योग :–

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

भारतीय उद्योग प्राचीन काल से विश्व प्रसिद्ध रहे हैं। परन्तु मुगल साम्राजय के पतन के पश्चात् 18वीं शताब्दी में भारतीय उद्योग का पतन की ओर अग्रसर थे। विदेश तथा भारतीय आक्रमणकारियों ने भी भारतीय उद्यागों को बहुत नुकसान पहुंचाया। नादिरशाह ने दिल्ली तथा लाहौर को, अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली तथा मथुरा को, जाटों ने आगरा, सिक्खों ने सरहिन्द तथा मराठों ने सूरत को न केवल लूटा बल्कि उन्हें नष्ट–भ्रष्ट भी किया। इसके अतिरिक्त भारत के कुटीर उद्योगों एवं शाही कारखानों में निर्मित वस्तुओं की मांग बिल्कुल समाप्त हो गई जिसका असर भारतीय कुटीर उद्योगों पर पड़ा। सामन्तों की आर्थिक स्थिति की आर्थिक स्थिति के खराब हो जाने के कारण भी उद्योगों को बहुत नुकसान पहुंचा। इस काल में आन्तरिक तथा बाह्य व्यापार में भी गिरावट आई थी। इसके बावजूद भारत के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार के उद्योग स्थापित थे।

भारत का सूती वस्त्र उद्योग अपनी गुणवत्ता के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध था। भारतीय सूती वस्त रोम तथा अन्य यूरोपीय देशों में निर्यात किया जाता था। दिल्ली, गुजरात, सूरत, लाहौर, मुल्तान, आदि स्थानों पर सूती वस्त्र काफी मात्रा में बनाए जाते थे। बंगाल तथा बनारस रेशमी और मलमल के वस्त्रों के प्रसिद्ध केन्द्र थे। बनारसी साड़ियां प्राचीनकाल से सम्पूर्ण विश्व मे लोकप्रिय थी। कोरोमण्डल तट से सूती तथा रेशमी वस्त्र विदेशों को भेजे जाते थे। कश्मीर तथा पंजाब में ऊनी वस्त्र काफी मात्रा में निर्मित किए जाते थे।

चीन पटसन हथियार, धातु के बर्तन, सजावटी सामान, आभूषण आदि दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, आगरा, बनारस, जौनपूर, पटना, अहमदाबाद, बुरहानपुर और औरंगाबाद आदि स्थानों पर बनाये जाते थे। बंगाल, महाराष्ट्र तथा आन्ध्र में जहाज तथा नावें बनाई जाती थी। पार्किनसन का मतहै कि ‘‘भारतीयों ने जहाज निर्माण की कला अंग्रजों को सिखाई थी।’’

5. आन्तरिक व्यापार :–

18वीं शताब्दी में आन्तरिक व्यापार पतन की और अग्रसर था। उस समय नगरों में बेकारी फैली हुई थी। किसी कवि ने आगरा के विषय में लिखा है कि नगर में हुनर और शिल्प की कुशलता के होते हुए भी शिल्पकार बेकार थे। बाजार में दुकानों पर धूल जीम हुई थी। दुकानदार खाली बैठे रहते थे। आन्तरिक व्यापार की अवनति के अनेक कारण थे, जो इस प्रकार हैं–

1. मुगल साम्राज्य के पतन के परिणामस्वरूप देश में अशान्ति एवं असुरक्षा का वातावरण उत्पन्न हो गया, जिसके कारण आन्तरिक व्यापारियों ने व्यापार में रूचि लेनी बन्द कर दी।
2. विदेशी आक्रमणकारियों एवं विद्रोही सरदारों ने न केवल औद्योगिक नगरों को बुरी तरह से लूटा, बल्कि उन्होंने व्यापारियों को भी नहीं बख्शा।
3. 18वीं शताब्दी में मार्गों पर चोरों तथा डाकुओं का भय हमेशा बना रहता था। वे व्यापारियों का माल लूट लेते थे और विरोध करने पर उन्हें मौत के घाट भी उतार देते थे।
4. उस समय यातायात के साधन विकसित नहीं थे। ज्यादातर व्यापार, ऊँटों, घोड़ों, बैलों या बैलगाड़ियों की सहायता से काफिलों के रूप में किया जाता था। अतः यातायात के साधनों का पिछड़ापन आन्तरिक व्यापार के विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी।
5. मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् सम्पूर्ण भारत छोटे–छोटे स्वतंत्र भागों में विभाजित हो गया था। इन राज्यों के नवाबों या शासकों ने अपने–अपने क्षेत्रों में व्यापारिक चुंगी गृह कर स्थापित कर लिए थे। एक व्यापारी को विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग दर से चुंगी गृह कर स्थापित कर लिए थे।

एक व्यापारी को विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग दर से चुंगी देने पड़ती थी। जिससे परेशान होकर अनेक व्यापारियों ने व्यापार करना बन्द कर दिया था।

6. इस समय भारत में पुर्तगालियों, डचों, अंग्रेजों तथा फ्रांसिसियों ने भारत के साथ व्यापार करना आरम्भ कर दिया था। भारतीय व्यापारी यूरोपीय व्यापारियों से स्पर्धा करने में असफल रहे।

इन बाधाओं के बावजूद स्थल तथा जल के रास्तों से भारतीय व्यापारी विभिन्न वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाते थे।

6. ब्रह्म व्यापार :–

18वीं शताब्दी में यद्यपि विदेशी व्यापार के लिए भारत का वातावरण अनुकूल नहीं था, इसके बावजूद भारत के एशिया तथा यूरोप के अनेक देशों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित थे। भारत का व्यापार बहुत व्यचस्थित ढंग से अरब सागर एवं फारस की खाड़ी के साथ हो रहा था। भारत के व्यापारी काबूल, कन्धार, बल्ख, बुखारा, काश्गर, अफगानिस्तान और मध्य एशिया में निवास करने लगे थे। वे भारतीय वस्तुओं को एशिया तथा यूरोप के बाजारों में पहुँचाते थे। भारतीय वस्तुएं चीन, हिन्द चीन, मलाया जापान तथा बर्मा आदि देशों मे पहुंचाई जाती थी। सूती वस्त्रों की यूरोपीयन एवं एशियाई देशों में बहुत मांग थी। इसके अलावा गेहूँ, चावल, नील, अफीम, मसाले, चीनी, आभूषण, मिट्‌टी के बर्तन, सजावटी सामान आदि विदेशों को निर्यात किए जाते थे। लोहा तथा इस्पात मौसलीपट्‌टम से विदेशों को निर्यात किया जाता था। गुजरात की बन्दरगाहों से बहुमूल्य पत्थर, दवाइयाँ, संगमरमर, अफीम तथा मसाले विदेशों में भेजे जाते थे। कोरोमण्डल तट से सूती वस्त्रों का निर्यात किया जाता था।

भारत के व्यापारी विदेशों से सोना, चाँदी, हीरे–मोती, चीनी–शीशे के बर्तन, इत्र, शराब, मेवे, विलासिता का सामान आदि मंगवाते थे। 16वीं शताब्दी में यूरोपीय व्यापारी जो भारतीय समुद्री तटों पर पहुंचे थे उन्होंने भारतीयों से सोना–चाँदी के बदले वस्तुएँ खरीदी, जिससे भारतीय उद्योगों एवं व्यापार की उन्नति हुई। शिल्पकारों तथा कारीगरों ने बड़ी मात्रा में वस्तुएँ तैयार करनी आरम्भ की, जिनको एशिया, अफ्रीका और यूरोप की मंडियों में भेजा जाता था। इसके बदले भारतीय कच्ची रेशम, हाथी दांत, मोती और कछुए की खाल मंगवाते थे। इस समय भारत का निर्यात आयात की तुलना में अधिक था। भारत केवल विलास की वस्तुएँ ही बाहर से मंगवाता था।

भारतीय व्यापार में सौदाग, बैकर, कर्ज देने वाले साहूकारों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। उस समय व्यापारियों को आसान ब्याज पर ऋण दिया जाता था। व्यापारियों तथा व्यवसायियों ने अपने हितों की रक्षा कके लिए व्यापारिक संघ बना रखे थे।

पुर्तगाली, डच, अंग्रेजी तथा फ्रांसिसी कंपनियाँ भी भारतीय व्यापार में रूचि लेती थी। प्लासी तथा बक्सर के युद्धों के पश्चात्‌ अंग्रेजो ने भारतीय व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया था। उस समय बंगाल में जगत सेठ, गुजरात में नाथ जी, दक्षिण भारत में चैटी जैसे व्यवसायी एवं व्यापारी निवास करते थे। इनमें सबसे धनाढ्‌य व्यक्ति नाथु कोठारी चैटी था। उसका व्यापार बर्मा, मलाया तथा पूर्वी द्वीपों तक फैला हुआ था। बैंकर तथा सौदागर आधुनिक बैंकों की भूमिका निभाते थे। वे धन देने व लेने के अलावा हुण्डिया भी जारी करते थे। 18वीं शताब्दी में साहूकारों, बैंकरों तथा धनी व्यापारियों के पास

धन की कमी नहीं थी, परन्तु यह धन बिखरा हुआ था। यही कारण था कि भारत के व्यापारी यूरोपीय व्यापारियों की स्पर्धा का सामना न कर सके। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने भारतीय शिल्पकारों से सीधा संबंध स्थापित कर लिया। वे सस्ती मजदूरी दर या अग्रिम राशि देकर भारतीय कारीगरों से वस्तुएँ निर्मित कराते थे और उन्हें मुँह मांगे दामों पर बेचते थे। अंग्रेज भारतीयों को वस्तुएँ निश्चित मूल्यों पर बेचने व खरीदने पर बाध्य करते थे। इसके अलावा भारतीय कारीगरों के साथ मानसिक तथा शारीरिक अत्याचार भी किए जाते थे।

निष्कर्ष : निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि 18वीं शताब्दी के मध्य भारत की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। मुगल साम्राज्य के पतन, विदेश आक्रमणकारियों के आक्रमणों, देशी सरदारों के विद्रोह के कारण, भारतीय कृषि उद्योग तथा व्यापार पतन की ओर अग्रसर हो गए। भारत की अधिकतर जनता कृषि पर निर्भर थी जो गरीबी का जीवन व्यतीत कर रही थी। समय–समय पर पड़ने वाले अकालों ने कृषकों की कमर तोड़कर रख दी थी। क्षेत्रीय शासकों द्वारा स्थापित चुंगी गृहों से व्यापारी परेशान थे। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के आगमन से भारतीय कृषि, उद्योग तथा व्यापार बिल्कुल समाप्ति की ओर अग्रसर हो गए थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Bradley B.F., Trade Unionism in India.
2. Dange, S.A., On the Indian Trade Union Movement.
3. Lakhanpal, P.L., History of Congress Socialist Party
4. Lakshman, P.P., Congress and Labour Movement in India.
5. Masani, M.R., The Communist Party of India.
6. Overstreet, & Windmiller, Communism in India.
7. Sinha, L.P., Left Wing in India.
8. Sen, Sukomal, Working Class in India